बीच के दिन

देवेंद्र

बीच के दिन

जहाँ आगे जाने के लिए कोई रास्ता नहीं बचता और जहाँ नदी का पानी ठहर जाता है। बावजूद इसके कि शहर में वसंत का आभास देने के लिए कोयल कूकती रहती फिर भी ठहरे हुए पानी से निकल कर बदबू चारों ओर फैल रही है, यह कहानी, जो आपके सामने एक दिल-तोड़ हकीकत के बाद भी मात्र एक कहानी बनकर रह गई है, उसी बदबू से निकल आई है। अब मेरी ही तरह आपको भी यह बता पाने में बहुत ही

मुश्किल होगी कि बदबू सबसे ज्यादा कहाँ है। विश्वविद्यालय के किस विभाग में? अथवा विभाग के किस लड़के में? जो पढ़ने में सबसे तेज है उसमें? या उसमें जो निरा लुच्चा होने की संभावनाओं से भरपूर है? बहरहाल, मैं क्या, यहाँ का चपरासी या प्रोफेसर जो भी अमर को थोड़ा-बहुत जानता, वह उसे लुच्चा या आवारा तो नहीं मान सकता, भले ही उसके घर या गाँव वालों को अब इस बात में कोई गुंजाइश न दिखती हो।

आज फिर एक इंटरव्यू देकर लौटा हुआ अमर इस चिलकती धूप के बावजूद अपना सामान रखकर सीधे विभाग जाता है, हालाँकि विभाग के किसी रजिस्टर में उसका नाम नहीं है लेकिन ढेर सारी बुराइयों की तरह यह चीज भी उसकी आदत में शामिल है। कुछ इस तरह कि इससे बच पाना न उसके वश का है, न ही उसकी ऐसी कोई इच्छा है। तभी कहीं बगल से अचानक लड़कों का सामूहिक शोर गूँजता है। अगर आप यहाँ नए-नए आए हों और संयोग से कहीं गाँव से आए हों तो यह शोर सुनकर आपका कलेजा दहल जाएगा। सोचेंगे, जरूर कोई कुएँ में गिर गया है। लेकिन नहीं, असल बात अमर जानता है - जरूर कोई लड़की उधर से गुजर रही होगी।

विभाग के दफ्तर में शर्मा जी मेज पर पैर फैलाए इत्मीनान से कुछ राजनीति बतिया रहे हैं। चार-पाँच लड़के बेवजह कभी कोई रजिस्टर पलटते या किसी की चिट्ठी खोलते। यह अमर की ही बिरादरी है। अचानक उसे देखते ही सब जोर से चिल्लाते - आओ-आओ अमर, कैसा रहा इंटरव्यू? कौन एक्सपर्ट था? क्या-क्या पूछा था और कितने कंडीडेट थे? आदि-आदि। अमर संक्षिप्त-सा जवाब देता है "यार, पहले से ही हेड का एक आदमी वहाँ था" और सबके-सब एक निश्चित सच-सा उत्तर पाकर हँस पड़ते। एक विद्रूप व्यंग्य चारों ओर फैल जाता है। इस महँगाई में जबकि एक-एक सिक्का दाँत से ज्यादा कीमती और वजनदार हो गया है, अमर ढेर-सारे रुपए किराए में फूँकने की आदत पाल चुका है।

सुनील, अमर का दोस्त है। अमर उससे कहता - "यार, भूख लगी है। चलो कैफेटीरिया में कुछ खाऊँगा, तुम चाहो तो चाय पी लेना।" रास्ते में चलते हुए जब अमर अपने इंटरव्यू के सवाल बता रहा था तभी सुनील ने पूछा - "अमर, यह जगह किस अखबार में निकली थी? तुम बताते तो मैं भी भर देता।" अमर के चेहरे पर तत्काल के लिए झेंप उभरी, सोचा - यह सुनील खुद इतनी ढेर सारी जगहें आवेदन भेजता है लेकिन कभी जिक्र तक नहीं करता - फिर बोला - "शायद उस समय तुम कहीं गए थे या संभवतः मैं ही भूल गया वरना तुम्हारा साथ अच्छा ही होता। चलो ठीक ही हुआ नहीं तो तुम्हारा

भी किराया डाँड़ जाता।" साथ-साथ चलते हुए भी दोनों एक-दूसरे की बातों पर यकीन नहीं करते।

डेढ़ सौ रुपया। एक पूरे महीने का खर्च लेकर अमर घर से आया था, लेकिन इस इंटरव्यू के चलते कुछ मुड़े-तुड़े नोट ही पाकिट में बचे हैं। चाय पीते हुए सुनील से पूछा -"विमला है?"

- "हाँ कल दिखी थी।"

- "कुछ कह रही थी।"

- "मैं मिला नहीं, शाम को देखा था हॉस्टल की ओर जा रही थी।"

कमरे पर लौटते हुए अमर ने तय किया कि वह शाम को विमला से मिलने जाएगा।

अक्सर दो गहरे मित्रों के प्रथम परिचय का कोई तीसरा माध्यम समय के साथ नेपथ्य में चला जाता और दोनों उसे बिल्कुल भूल जाते या कभी-कभी तो ऐसा होता कि दोनों की ही धारणा उसके विषय में एकदम बुरी होती। आज से पाँच साल पहले अमर और विमला के बीच परिचय का जो तीसरा सूत्र था, वह इनके बीच से कब खो गया, इसे कोई नहीं जान पाया। बात बस यह हुई कि धीरे-धीरे वे रोज शाम मिलने लगे। दोनों में किसी न किसी का काम पड़ा ही रहता। फिर बगैर काम के भी, यूँ ही। दोनों एक दूसरे के गाँव, घर, दोस्तों और एक-एक चीज के बारे में समान रूप से परिचित होते चले गए। उन्हीं दिनों एक शाम महिला छात्रावास के गेट पर खड़ा होकर अमर विमला से कुछ बात कर रहा था। तभी विमला की एक मुँहलगी सहेली बिल्कुल आकस्मिक तरीके से आकर वहीं खड़ी हो गई। अपनी कुहनी से विमला को ठुनकी मारी और अमर से कुछ मजाक करके लौट गई। उसकी इस अप्रत्याशित हरकत से विमला और अमर न सिर्फ भौंचक्के रह गए बल्कि विमला तो शरमा कर लाल पड़ गई। इस अटपटेपन के साथ ही दोनों के बीच कोई बात अभिव्यक्त हुई? विमला ने महसूस किया कि भीतर सोई हुई कोई बहुत नरम चीज हिल जाने से आँख मिचमिचाते हुए करवट ले रही है। और अमर देर तक उस लड़की को जाते हुए देखता रहा। पता नहीं क्यों उससे विमला की ओर ताका नहीं जा रहा था। बाहर पेड़ों पर हँस रहे फूलों से कुछ कहकर कनखी ताकती मुस्कराती हवा उसके भीतर घुसने की कोशिश कर रही थी। कहना न होगा कि उसी दिन के बाद धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे से बहुत सारी अनकही बातें भी कहते चले गए। इस बीच रूठना-मनाना, लड़ना-झगड़ना सब कुछ चलता रहा। दोनों एक-दूसरे की जरूरत बनते चले गए।

इसके कई महीने बाद एक साँझ गंगा के किनारे रेत पर बैठे हुए, वे जाने क्या-क्या बातें करते रहे। देर होती रही। आखिर सूरज क्या करता? थक कर पेड़ों के पीछे चला गया। मल्लाह नाव लेकर किनारों की ओर लौट पड़े। जमाने का क्या भरोसा, रात के वीराने में गंगा के साथ कोई बदतमीजी न कर दे, सो टिमटिमाती बत्तियों के अँजोर में घाट जगे हुए थे। लेकिन वहाँ अकेले में दोनों बैठे तो बैठे ही रहे। जब बातें खतम हो गईं और कहने के लिए कुछ भी नहीं रह गया तब अमर बार-बार विमला के चेहरे की ओर ताक रहा था। कुछ छिपकर, कुछ बदतमीजी से। पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। विमला से यह बात छिपी नहीं। गंगा का पानी उसके भीतर धीरे-धीरे हिल रहा था। आस-पास की सारी चीजें चुप थीं। आकाश और पृथ्वी भी। पलकों के गिरने से भी आहट हो सकती थी। इसलिए समय भी वहीं अटक गया। सब जैसे कुछ सुनने के लिए कान रोपे हों। तब इस भय से भरा हुआ कि कहीं कुछ हिल न जाय, अमर ने कहा - "विमला, मैं तुम्हें छू लूँ?" अचानक सब हँस पड़े - इतनी सी बात। विमला ने कहा - "छू लो।"

तब जैसे छोटे लड़के फूल की पंखुड़ी को छूते हैं, उसने तर्जनी से बहुत हल्के उसके गाल को छू लिया। वह हँस पड़ी। एक ममता चारों ओर बिखर गई। उस दिन हॉस्टल आकर विमला ने अपनी डायरी में लिखा - "उसका दिल मेरे सीने में धड़कता है।" और अमर तो अकेले में रह रह कर जाने क्या सोचता, मुस्कराता सारी रात बिता दिया, नींद नहीं आई। आज लगता जैसे शताब्दियों पहले बीते हुए वे दिन अपार खुशियों से भरे थे, जब अमर पढ़ाई पूरी करने की धुन में था और विमला घर से निश्चिंत थी।

पिछले डेढ़ साल से पढ़ाई पूरी करने के बाद नौकरियाँ ढूँढ़ने का जो सिलसिला शुरू हुआ उसने अनुभवों के अँधेरे बर्फ के नीचे सारी उमंगों और उम्मीदों को दबाकर ठंडा कर दिया। एक भरी-पूरी जिंदगी बाहर और भीतर से खोखली होने लगी। एक बार जब यह खोखलापन जिंदगी से शुरू हुआ तो अमर ने देखा कि माँ, बाप, गाँव, घर यहाँ तक कि विमला भी इससे बची नहीं है। माँ नौकरी के बारे में पूछती, बाप नौकरी के बारे में पूछता। गाँव के लोग पूछते - क्या कर रहे हो? जीवन से बँधा यह सीधा-सादा सवाल विष बुझे तीर की तरह इतना असहनीय हो गया कि अगर पैसे की जरूरत नहीं पड़ती तो वह कब का घर जाना बंद कर देता। दबी जबान से पिताजी उसे बताते फलाँ के लड़के की वहाँ नौकरी लग गई, और महीने भर के लिए डेढ़ सौ रुपया देते हुए यह जरूर बताते कि किससे उधार लेकर आए हैं। इस भयावह चुप्पी के क्षणों में उसे लगता कि शीशे की तपती छत के ऊपर वह अकेला और असहाय खड़ा है।

साँझ का समय। दिन भर की भीड़ में थका हुआ सूरज विश्वविद्यालय के कैंपस में ढलने चला आता। प्रकृति का समूचा सौंदर्य यहाँ आकर अटक जाता है। लड़के-लड़कियाँ नहा-धोकर एकदम तरोताजा होते और सड़क पर निकल पड़ते। इनमें तरह-तरह के होते हैं - कुछ सिर्फ छींटाकशी करके रह जाते, कुछ ढेले भी फेंकते हैं। कुछ गालियाँ सुनकर ही रह जाते, कुछ कभी-कभार लात-चप्पल भी पा जाते हैं। कुछ इन सबसे अलग सीधे महिला छात्रावास पहुँचकर चपरासी भेजते, इंतजार करते, फिर प्रेम करते, फिर चले आते। पूरे विश्वविद्यालय में ये बहुत कम हैं और ये अक्सर दूर-दूर से एक-दूसरे को पहचानते हैं। इनमें से अधिकांश अमर को भी जानते हैं और विमला को भी।

आज जब अमर महिला छात्रावास के गेट पर पहुँचा तो इंतजार नहीं करना पड़ा। विमला के साथ दो लड़कियाँ थीं, वह जल्दी में कहीं जा रही थी। चेहरे पर थकावट और परेशानी झलक रही थी। अमर को देखकर मुस्कराने की कोशिश भी नहीं की, पास आकर पूछा - "तुम कब लौटे?"

- "आज दोपहर को।"

- "इंटरव्यू कैसा हुआ?"

- "इंटरव्यू से कोई फरक नहीं पड़ता, वहाँ के लिए मैं विजातीय था।"

दोनों लड़कियाँ दूसरी ओर चली गई थीं। बातचीत के क्रम में अमर को फिर उसी कृत्रिम औपचारिकता का अहसास होने लगा जो पिछले कुछ दिनों से वह विमला में महसूस कर रहा था। कहीं कोई उत्सुकता नहीं, कहीं कोई सहजता नहीं। बगल में एक लड़का स्कूटर पर पैर टिकाकर खड़ा था और एक लड़की हैंडिल पकड़े उछल-उछल कर बात कर रही थी। यहाँ अधिकांश लड़के कमोबेश इसी मुद्रा में चारों ओर बिखरे हुए थे। सड़क से गुजरते लड़के-बूढ़े सभी जरूर एक आँख इधर उधर देख लेते। अमर कुछ असहज महसूस कर रहा था। चुप्पी तोड़ते हुए उसने कहा - "चलो उधर पेड़ की तरफ चलें। थोड़ा घूम लेना। वहीं बैठेंगे।"

विमला चल पड़ी, बगैर किसी खिंचाव और मकसद के तेज मोटर सायकिल पर बैठे हुए तीन "हीरो" लड़के जोर से हार्न बजाते बगल से गुजरे। कुछ 'टाँट' किए। लेकिन विमला ने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

पेड़ के पास बैठते हुए दोनों चुप थे। हवाओं से लग कर पत्तियाँ आहिस्ते-आहिस्ते हिल रही थीं। पेड़ों से लटकता अँधेरा जमीन को छू रहा था। चारों ओर फैले सन्नाटे के बीच एक शोर दबा हुआ था। विमला की चप्पल बार-बार अमर के पैर वाले अँगूठे पर उछल रही थी, लेकिन वह बहुत तटस्थ थी। भीतर की ऊब जब असह्य होने लगी, तो अमर ने पहलकदमी की - "क्या सोच रही हो?" विमला ने लंबी साँस ली - "मीनाक्षी मर गई। मर क्या गई, जला दी गई।"

अमर चौंक पड़ा - **"अरे, कब कैसे?"**

- "नरेंद्र ने जला दिया। हरामी, नीच। पीछे-पीछे लगा रहता था। प्रेम करता था। शादी के बाद पैसा चाहिए। लोग कितने लुच्चे होते हैं।"

अत्यधिक उत्तेजना के कारण वह हाँफ रही थी। अमर को लगा कि विमला कहीं मीनाक्षी की संभावनाओं में खुद को तो नहीं सोच रही है। वह बात को टालने की गरज से दूसरी ओर घूम गया - "कल छात्रावास में अमरूद बेचने आई एक बारह साल की लड़की के साथ कुछ लड़कों ने..." विमला अचानक उठी - "अमर मैं हॉस्टल जा रही हूँ।"

हॉस्टल के बड़े फाटक तक आकर वह रुक गई। एक मिनट तक कुछ सोचती रही, फिर बोली - "कल तुम थे नहीं, पापा आए थे।"

"अमर, मैं तुमसे एक बात बताना चाहती हूँ। हो सकता है तुम कुछ दूसरा सोचो लेकिन बहुत परेशान हूँ। पापा ने मेरी शादी ठीक कर ली है। लड़का जमशेदपुर में इंजीनियर है।" अमर को लगा कि सामने की दीवारें बहुत तेजी से घूम रही हैं और एक तूफान उसके भीतर विस्फोट कर रहा है। उस भयावह क्षण में वह चुपचाप खड़ा था। विमला ने बहुत हिम्मत से उसके चेहरे की ओर देखा जहाँ असंख्य बनती-मिटती लिपियों के एक-एक अक्षर आक्रामक होकर उभरते और दबा दिए जाते। वह होंठों को भींच रहा था, बोला - "विमला, सारी बातें साफ हो जानी चाहिए। तुम परेशान क्यों थी? मुझे बता पाने के द्वंद्व से या शादी से?"

विमला जवाब दे रही थी - "मैं अपने बारे में कुछ नहीं सोचती। और बगैर पिता से पैसे लिए मैं हॉस्टल में एक दिन ठहर भी तो नहीं सकती। विश्वविद्यालय की जिंदगी हमारी असलियत से बहुत दूर है। यहाँ से मैं कोई फैसला नहीं ले सकती। फिर मीनाक्षी की घटना... मैं कोई निर्णय नहीं ले पाऊँगी।"

अमर को यह भाँपते देर नहीं लगी कि आज विमला की बातों में समझदारी की कमी नहीं, बल्कि दुनियादारी का अतिरेक है। वह विमला नहीं कुछ और बनकर अपनी सुरक्षा चाहती है। बहुत दृढ़ और संयत होने की कोशिश करते हुए उसने कहा - "देखो विमला, तुम्हारी जिंदगी है, तुम्हारा विवेक है लेकिन एक बात जान लो - मीनाक्षी के साथ जो हुआ वह बहुत बड़ा अपराध है। मीनाक्षी औरत थी, तुम औरत हो। क्या इसीलिए तुम सोचती हो कि इस पर सोचना सिर्फ तुम्हारा धर्म है? और इससे सिर्फ तुम्ही निर्णय ले सकती हो। मैं नहीं जानता कि मीनाक्षी को जलाकर नरेंद्र को कितना, क्या मिला? लेकिन तुम्हें मिल रहा है। एक चीज जो बहुत सच है उसके खिलाफ तुम अपराध को, तर्क बना रही हो।"

थोड़ी देर तक सब कुछ चुप था। अमर एकटक विमला के चेहरे की ओर ताक रहा था, लेकिन वह जैसे कुछ न सुनना-समझना चाहती दूसरी ओर देख रही थी। उसके चेहरे पर कुछ भी खोज पाने की असफल चेष्टा से घबराकर वह बोला - "वैसे किसी के निर्णय को बदलना मेरी आदत के खिलाफ है लेकिन मजबूरी में किए गए गलत काम को भी सही मानने की खुदगर्जी आदमी को और ज्यादा गलत बना देती है, इसलिए असलियत तो जानना ही चाहिए।"

फिर थोड़ी देर तक छाई चुप्पी के बाद विमला ने कहा - "मैं हॉस्टल जा रही हूँ।"

अमर कुछ देर तक खड़ा उसको देखता रहा फिर धीरे से बोला - "ठीक है मैं चल रहा हूँ।"

वहाँ से चलने के बाद विमला जो कुछ महसूस कर रही थी वह दो तरह का था। पहले तो उसे एक संतोष और राहत मिली जो बहुत मुश्किल काम कर लेने के बाद मिलती है। दूसरी तरफ, किसी सुरक्षित और सजाई गई चीज को बेतरतीबी से उलट-पुलट दिए जाने की तरह लग रहा था। उसे लगा, आज कितने दिन बाद अमर ने उसे फिर उसी बर्बरता से चीर दिया, जैसे पहले करता था। नई-नई दोस्ती के समय कोई भी बात जब उसे गलत लगती तो वह बरस पड़ता। जैसे भीतर छिपे हुए नासूर को चीर कर मवाद निकाल दी जाय और तब जैसा सुख लगता है, विमला उसी सुख को प्रेम करती थी लेकिन आज जो नासूर उसने चीरा उसकी मवाद सिर्फ दिखाकर छोड़ दिया। उसे बाहर नहीं निकाला। इस छटपटाहट के बावजूद वह बार-बार संयत होने की कोशिश करते हुए सिर को झटक रही थी। लेकिन उस मन का क्या करती जो मान ही नहीं रहा था। इन्हीं दोनों भावों के तीव्र प्रवाह में उसका हृदय बार-बार डूबता-उतराता।

उसे लगा कि आज वह बहुत कमजोर हो गई है। और अमर जब वहाँ से चला तो दुकान पर एक सिगरेट खरीदकर सुलगाया, फिर एक रुपया देकर चल दिया। दुकानदार ने उसे बुलाकर पैसा लौटाया। सामने से आ रहे एक प्रोफेसर उसे बुलाकर कुछ पूछना चाहते थे लेकिन उसने नमस्कार ही नहीं किया। आगे जाकर चाय की दुकान पर वह जिस बेंच पर बैठा, वहीं यूनिवर्सिटी के चार-पाँच नए-नए लेक्चरर बैठे हुए किसी लड़की के "हिप" के बारे में बात कर रहे थे, और इस बात के लिए जोर आजमाइश कर रहे थे कि वह जरूर चरित्रहीन है। उनके लगातार चल रहे तर्कों में एक ने इजाफा किया कि "बँगालिने" वाकई ऐसी होती हैं। अमर अचानक तेजी से उठा और पीछे मुड़कर बोला - "आप लोगों का अपने विषय में क्या ख्याल है?" सबके सब भौंचक्के रह गए, जैसे बेबात की बात बीच में बोलने वाला यह आदमी निहायत असभ्य और उजड्ड हो। उसे जोर की भूख लगी हुई थी लेकिन होटल में दो रोटी खाने के बाद जब कोई स्वाद नहीं मिला तो उठकर चल दिया। प्राक्टर आफिस के सामने छात्रों की भीड़ जमा थी। लड़के-कुर्सियाँ और शीशे तोड़ रहे थे। पता लगा कि, हॉस्टल में गुंडों ने एक लड़के को गोली मार दी है। छात्रों का हुजूम छात्रसंघ के खिलाफ नारे लगा रहा था। उनका पूरा विश्वास था कि छात्रसंघ प्रशासन का दलाल है। कुर्ता-पायजामा पहने नेता टाइप लड़के इन सारी कार्रवाइयों में आगे पहुँचने के लिए एक-दूसरे को धक्का दे रहे थे। अमर जानता है कि इनमें से अधिकांश अगले साल छात्रसंघ का चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे हैं और यह सारी तैयारी उनके चेहरे पर इस समय एक विकृत गुस्सा बनकर ऐंठ रही है। तभी गेट के भीतर पुलिस और पी.ए.सी. की कई गाड़ियाँ घुसती दिखाई दीं। लड़के तितर-बितर होने लगे।

हॉस्टल आने पर अमर ने देखा कि वे सारे नेता उससे पहले यहाँ आ चुके हैं। उनके इर्द-गिर्द लड़कों का छोटा-छोटा झुंड इकट्ठा है और वे बहुत ही शांत और निस्पृह भाव से पूरी घटना की क्रमवार जानकारी दे रहे हैं। साथ ही यह भी बता रहे हैं कि गुंडों को कौन नहीं जानता? लेकिन उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। छात्रसंघ उनके पक्ष में है। आदि-आदि।

कमरे का दरवाजा खोलते ही उसने देखा कि टैंपो से तीन लड़के उतरे। बात क्या हुई अमर जान नहीं पाया लेकिन वे तीनों टैंपो वाले को बुरी तरह से पीटने लगे। शायद टैंपो वाले को यहाँ का कायदा-कानून नहीं मालूम, नहीं तो भला मुल्क के किसी कोने में शरीफजादों से पैसा माँगा जाता है। टैंपो वाला बाबू साहब लोगों के पैर पर गिरकर अपनी गलती के लिए बार-बार माफी माँग रहा है। अमर सारे लड़कों की तरह चुपचाप देखता रहा और जब नहीं देखा गया तो भीतर चला गया। कुछ लड़के जिन्हें "अपने"

होने का भी थोड़ा अहसास था, वे आगे बढ़कर यह समझाते हुए छोड़ देने का आग्रह करने लगे कि -"सालों को तमीज नहीं होती है। जाने दीजिए। अब इसका दिमाग ठिकाने आ जाएगा।"

रात को सोते समय अमर ने हिसाब लगाया तो पाया कि शायद यह उसकी जिंदगी का सबसे खराब दिन रहा है वरना ये सारी अतिपरिचित घटनाएँ उसे इस तरह असहज क्यों कर देतीं। उसका दिमाग जोर से भन्ना रहा था। दिन भर की बेहद थकावट के बावजूद उसे नींद नहीं आ रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर के अंतराल पर उसके भीतर एक तूफान उठता। वह ऊपर से बहुत शांत और तटस्थ दिखते हुए बिस्तर पर पड़ा-पड़ा छत की दीवाल पर एक ऐसा चित्र बनाने लगा जो उसे थोड़ी देर सुख दे सके। बचपन के कई मित्र, जिनका अब कहीं अता-पता नहीं, एक क्षण के लिए माँ, बाप, विमला, सुनील सब बारी-बारी दीवाल पर उतरते लेकिन भीतर चल रहा तूफान सबको डुबो देता।

इन्हीं दुश्चिंताओं में पड़े-पड़े जैसे ही उसकी आँख झपकी कि रात के सन्नाटे को बेधती भागो-भागो!! की आवाज सुनकर वह झटके से उठा। बगल वाले हॉस्टल में पुलिस लड़कों की तलाशी लेते हुए पीट रही थी। जल्दी-जल्दी कमरे से निकलकर उसने ताला बंद किया। पीछे से बूटों की आवाज दौड़ती चली जा रही थी। जब वह भाग रहा था तभी अचानक कोई मोटी चीज उसके सिर से टकराई। उसे लगा कि चक्कर खाता हुआ वह किसी अँधेरे कुएँ में लुढ़का जा रहा है। तभी सनसनाता हुआ एक पत्थर बगल से गुजरा और बूटों के बीच से बहुत भद्दी चीख उभर कर पीछे की ओर भागी। उसे लगा कि हाथ पकड़कर कोई खींच रहा है।

हॉस्पिटल के इमरजेंसी वार्ड में जब उसकी आँख खुली तो देखा कि कई लड़कों के सिर पर पट्टियाँ बँधी हैं। सिर से खून का रिसना ठंडा-ठंडा महसूस हो रहा था तभी बगल में खड़ा सुनील मुस्कराया - "साले एकदम भोंदू हो। एक ही डंडे में आँख मुँद गई। पुलिस वाले पकड़ लेते तो अब तक दूसरी दुनिया में रहते।"

अमर मुस्कराया - "चलो अच्छा हुआ। मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहा।"

दूसरे दिन अमर घर चल पड़ा। रात वाली घटना से विश्वविद्यालय में हंगामा मचा हुआ था। लड़कों का बड़ा जुलूस वाइसचांसलर लांज के सामने मोर्चा लिए हुए नारे लगा रहा था। चारों ओर पी.ए.सी. की गाड़ियाँ खड़ी थीं। एक छात्रनेता, जो अब यहाँ छात्र नहीं है, जल्दी-जल्दी मोटरसाइकिल से उतरा और भीड़ के आगे जाने की कोशिश करने लगा। आज से आठ साल पहले जब यहाँ अमर बी.ए. का छात्र बनकर आया था,

तब भी उसे इसी रूप में देखा था। छात्रसंघ में अपनी मजबूत पकड़ तथा अधिकारियों में भीतरी पहुँच की बदौलत अब वह विश्वविद्यालय में ठेके लेता है। उसकी बुजुर्गियत और अपने पुराने परिचय के कारण पुलिस वाले उसे देखकर मुस्करा रहे हैं, लेकिन वह बहुत उग्र है। लड़के उसे देखते ही जोर से चिल्लाये - "वी.सी. के दलालों को एक धक्का और दो।" और वह धक्का खाकर आगे चला गया।

अमर ने महसूस किया कि अब तक जो घृणा उसके भीतर ऐंठ रही थी, वह अब भीड़ में फैल रही है। वह दूसरी ओर मुड़ गया। आगे उसे सुनील मिल गया, बोला - "अभी अनिश्चित कालीन बंद भी नहीं हुआ तभी चल दिए।"

अमर ने कहा - "गाँव जा रहा हूँ।"

- कब लौटोगे?

- "कह नहीं सकता।" लेकिन अमर सोच रहा था कि अबकी बार शायद लौटना न हो सके। गेट के बाहर निकलते हुए उसे लग रहा था कि आठ साल पहले जो खिलता हुआ फूल यहाँ फल बनने की उम्मीद से आया था आज वह घायल होकर लौट रहा है। रास्ते में अकेले चलते हुए सारी घटनाएँ उसके दिमाग में बुलबुले की तरह डूब-उतरा रही थीं। वह बहुत शांत तटस्थ और हृदय की सारी संवेदनाओं को जागृत कर सोच रहा था -क्या विमला ने जो कुछ भी किया उससे अलग कुछ दूसरा कर पाना उसके लिए संभव न था? नाव खे सकने की सारी कलाओं से परिपूर्ण होकर भी कोई ऐसी नाव पर चढ़ना चाहेगा, बीच धारा में जिसका टूट जाना निश्चित हो? क्या विमला इस सामाजिक संरचना की ऐसी कमजोर बिंदु मात्र नहीं है जहाँ पूरी तरह सड़ चुका हाँड़ मांस, और रक्त सिर्फ जख्म बनकर फूटता है। तब विमला के प्रति क्रूर होने की भूल करना क्या अपनी दुर्बलता का बचाव करना नहीं है?

बस पर बैठते हुए उसे अपना गाँव याद आया और एक अदृश्य भय भीतर रेंगने लगा। एक बार उसके मन में आया कि लौट पड़े लेकिन ऐसा नहीं कर सका। यात्रियों से भरी हुई बस शहर की बढ़ती भीड़ से रुक-रुक जाती। दुकानों पर भी भीड़ है। लोग सामान खरीदने में व्यस्त हैं। सड़क पर रिक्शे, टैंपो भागे जा रहे हैं। इस समय वह शहर की जिस भव्य कालोनी के सामने से गुजर रहा है, आठ साल पहले वहाँ सूअर लोटते थे। विकास प्राधिकरण की बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें बन रही हैं। बावजूद इसके कि शहर में वसंत का आभास देने के लिए कोयल कूक रही है उसे लगा कि चारों ओर एक भयावह बदबू फैल रही है और कभी न कभी यह बदबू शहर की जिंदगी और मौत से जुड़ ही जाएगी।

https://www.hindiadda.com/beech-ke-din/